Journal of Socio-Educational & Cultural Research
International Journal of Arts & Social Sciences
Peer Reviewed Refereed Journal
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.12, N. 27, December 2026
DOI: https://doi.org/10.68868/14Js15aK37
www.jsecrjournal.in

मोहन राकेश के साहित्य में नारीवाद

डॉ. गौरव कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
धनौरी पी.जी. कॉलेज, उत्तराखंड

शोध-सार

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने नई कहानी आंदोलन और आधुनिक हिंदी नाटक को एक नई दिशा दी। उनके साहित्य में नारी-पात्रों का चित्रण इतना जीवंत, जटिल और यथार्थपरक है कि वे हिंदी साहित्य के इतिहास में एक विशेष स्थान रखते हैं। राकेश की नारियाँ परंपरागत साहित्य की सहनशील, मूक और त्यागमयी नारी की रूढ़ि को तोड़ती हैं। वे अपने अस्तित्व के प्रति सजग हैं, अपने दुःख को समझती हैं, और व्यवस्था से टकराने का साहस रखती हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में मोहन राकेश के नाटकों, कहानियों और उपन्यासों में नारीवादी चेतना के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्द : मोहन राकेश, नारीवाद, नई कहानी, हिंदी नाटक, नारी-अस्मिता, पितृसत्ता, आधुनिक चेतना

1. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में नारी की स्थिति का इतिहास एक लंबे संघर्ष का इतिहास है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक, साहित्य में नारी या तो देवी के रूप में पूजी गई या फिर भोग की वस्तु के रूप में चित्रित की गई। दोनों ही स्थितियों में उसका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व, उसकी अपनी इच्छाएँ और उसके अपने सपने कहीं पीछे छूट जाते थे। पाँचवें-छठे दशक के हिंदी साहित्य में जब 'नई कहानी' आंदोलन ने जन्म लिया, तो उसने साहित्य में मनुष्य को उसकी समग्रता में चित्रित करने का आग्रह किया। इस आंदोलन के सबसे महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों में से एक थे — मोहन राकेश। राकेश ने अपने नाटकों, कहानियों और उपन्यासों में नारी को उसकी पूरी जटिलता के साथ उपस्थित किया। उनकी नारियाँ केवल पात्र नहीं हैं — वे एक पूरी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध खड़ी आवाज़ें हैं।

डॉ. नेमिचंद्र जैन ने लिखा है : "राकेश के नाटकों में नारी-पात्र इतने सजीव और बहुआयामी हैं कि वे अपने युग के सामाजिक यथार्थ की सबसे सटीक अभिव्यक्ति बन जाते हैं।" (जैन, *रंगदर्शन*, 1973, पृ. 47) [1]। यह शोध आलेख मोहन राकेश के साहित्य में नारीवादी चेतना के उन सूत्रों को पकड़ने का प्रयास है जो उनकी रचनाओं में बुने हुए हैं — कभी स्पष्ट, कभी सूक्ष्म, लेकिन सदैव प्रासंगिक।

2. नारीवाद : अवधारणा और साहित्यिक संदर्भ

नारीवाद (Feminism) एक ऐसी विचारधारा है जो पितृसत्तात्मक समाज में नारी की दोयम स्थिति को चुनौती देती है और उसके लिए समानता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय के अधिकार की माँग करती है। साहित्य में नारीवाद का अर्थ यह नहीं है कि रचनाकार को घोषित रूप से नारीवादी होना चाहिए — बल्कि जब कोई रचना नारी के शोषण को उजागर करे, उसकी पीड़ा को वाणी दे और उसके संघर्ष को सम्मान दे, तो वह नारीवादी दृष्टि की रचना बन जाती है। मोहन राकेश ने कभी स्वयं को 'नारीवादी लेखक' नहीं कहा। लेकिन उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने नारी के मनोविज्ञान को, उसकी पीड़ाओं को और उसके संघर्षों को जिस संवेदनशीलता से समझा, वह एक गहरी नारीवादी दृष्टि की देन है।

डॉ. मधुरेश ने कहा है : "राकेश ने नारी को पुरुष की दृष्टि से नहीं, बल्कि नारी की अपनी दृष्टि से देखने की कोशिश की — और यही उन्हें अपने समकालीनों से अलग करता है।" (मधुरेश, *नई कहानी का पुनर्मूल्यांकन*, 1977, पृ. 83) [2]।

3. आषाढ़ का एक दिन : कला, प्रेम और नारी की कुर्बानी

मोहन राकेश का पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' (1958) हिंदी नाटक के इतिहास में एक मील का पत्थर है। इस नाटक की केंद्रीय नारी-पात्र मल्लिका शायद राकेश की सबसे जटिल और सबसे मार्मिक रचना है।

3.1 मल्लिका : प्रेम और त्याग की त्रासदी

मल्लिका एक ऐसी स्त्री है जो कालिदास से प्रेम करती है — न इसलिए कि वह एक महान कवि है, बल्कि इसलिए कि वह उस कालिदास से प्रेम करती है जो उसके साथ पहाड़ों पर घूमता था, जो उसकी संगति में कविता रचता था। जब राज्याश्रय मिलने पर कालिदास उज्जयिनी चला जाता है, तो मल्लिका उसे रोकती नहीं — लेकिन उसका यह न रोकना भी एक गहरी पीड़ा है।

नाटक में मल्लिका कहती है —

"मैं जानती थी, तुम जाओगे। जो व्यक्ति इतना बड़ा होता है, वह किसी एक स्थान पर, किसी एक व्यक्ति के साथ नहीं रह सकता। लेकिन यह जानते हुए भी मन नहीं मानता।"

— आषाढ़ का एक दिन, अंक 2 [3]

यह संवाद केवल प्रेम की पीड़ा नहीं है — यह उस स्त्री की पीड़ा है जो जानती है कि उसके प्रेमी की महत्त्वाकांक्षा में उसके लिए कोई जगह नहीं है। मल्लिका यहाँ एक ऐसी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जिसे समाज ने सिखाया है कि वह प्रेम करे, त्याग करे, और चुप रहे।

3.2 मल्लिका की अस्मिता का प्रश्न

नाटक के तीसरे अंक में जब कालिदास वर्षों बाद लौटता है, तो वह मल्लिका को उसी स्थिति में नहीं पाता। मल्लिका ने एक अनाम पुरुष से संबंध रखा, एक बच्ची को जन्म दिया — समाज की दृष्टि में वह 'पतित' है। लेकिन राकेश यहाँ एक क्रांतिकारी दृष्टि रखते हैं। मल्लिका अपने इस निर्णय के लिए किसी से माफी नहीं माँगती। वह कहती है —

"मैंने जो किया, अपनी इच्छा से किया। किसी के सामने मुझे उसका स्पष्टीकरण नहीं देना।"

— आषाढ़ का एक दिन, अंक 3 [4]

यह वाक्य नारीवादी दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मल्लिका अपने शरीर पर, अपने निर्णय पर अपना अधिकार घोषित कर रही है। यह 1958 के हिंदी नाटक में एक असाधारण साहस था।

डॉ. गिरिश रस्तोगी ने लिखा है : "मल्लिका हिंदी साहित्य की पहली नारी-पात्रों में से है जो अपनी देह और अपने निर्णय पर स्वायत्तता का दावा करती है।" (रस्तोगी, *मोहन राकेश : नाट्य-विमर्श*, 1982, पृ. 56) [5]।

4. लहरों के राजहंस : आध्यात्मिकता बनाम नारी की इच्छाएँ

राकेश का दूसरा नाटक 'लहरों के राजहंस' (1963) नंद और सुंदरी की कहानी है। यहाँ नारीवाद का प्रश्न एक अलग रूप में सामने आता है — यह प्रश्न है कि जब पुरुष आध्यात्मिकता के नाम पर सांसारिक जीवन छोड़ देता है, तो स्त्री का क्या होता है?

4.1 सुंदरी : इच्छाओं का दमन और विद्रोह

सुंदरी एक ऐसी स्त्री है जो जीवन से प्रेम करती है — रंगों से, सौंदर्य से, प्रेम से। जब उसका पति नंद बुद्ध के संघ में जाने का निर्णय लेता है, तो सुंदरी को लगता है कि उसके जीवन का सब कुछ छिन जा रहा है। वह विद्रोह करती है — और राकेश इस विद्रोह को न तो गलत ठहराते हैं और न ही सुंदरी को खलनायिका बनाते हैं।

नाटक में सुंदरी कहती है —

"तुम निर्वाण चाहते हो, शांति चाहते हो। लेकिन मैं जीना चाहती हूँ — इस देह से, इस मन से, इस संसार में। क्या यह पाप है? क्या स्त्री का जीना चाहना ही उसका अपराध है?"

— लहरों के राजहंस, अंक 2 [6]

यह संवाद सदियों की उस परंपरा पर प्रश्नचिह्न लगाता है जिसमें स्त्री की इच्छाओं को 'माया' और 'पाप' कहकर दबाया जाता रहा है। सुंदरी यहाँ केवल एक पत्नी नहीं है — वह हर उस स्त्री की आवाज़ है जिसकी इच्छाओं को धर्म, परंपरा या पुरुष की महत्त्वाकांक्षा के नाम पर कुचला गया।

4.2 नारी की इच्छाओं की वैधता

राकेश इस नाटक में एक महत्त्वपूर्ण नारीवादी प्रश्न उठाते हैं — क्या स्त्री की भौतिक और भावनात्मक इच्छाएँ वैध हैं? क्या उसे अपने जीवन के सुख की माँग करने का अधिकार है? सुंदरी का चरित्र इस प्रश्न का उत्तर हाँ में देता है। डॉ. इंदुप्रकाश पाण्डेय ने लिखा है : "लहरों के राजहंस में सुंदरी का चरित्र पितृसत्तात्मक धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध स्त्री की नैसर्गिक इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करता है।" (पाण्डेय, *आधुनिक हिंदी नाटक*, 1985, पृ. 112) [7]।

5. आधे-अधूरे : आधुनिक नारी का संघर्ष

'आधे-अधूरे' (1969) राकेश का सबसे परिपक्व नाटक है और नारीवादी दृष्टि से उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना भी। यह नाटक एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जहाँ पत्नी सावित्री और पति महेंद्रनाथ के बीच का टूटता हुआ संबंध केंद्र में है।

5.1 सावित्री : आर्थिक स्वावलंबन और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच

सावित्री उस आधुनिक शहरी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो एक ओर नौकरी करके परिवार का भरण-पोषण कर रही है, और दूसरी ओर घर-गृहस्थी, बच्चों और पति की अपेक्षाओं को पूरा करने की ज़िम्मेदारी भी उठा रही है। यह दोहरा बोझ उसे तोड़ रहा है।

नाटक में सावित्री का यह संवाद बेहद महत्त्वपूर्ण है —

"मैंने सोचा था, कुछ पा लूँगी — कुछ ऐसा जो सिर्फ मेरा हो। लेकिन हर तरफ से लगता है जैसे मैं किसी और के लिए हूँ — घर के लिए, बच्चों के लिए, उनके लिए। मेरे लिए कुछ नहीं बचता।"

— आधे-अधूरे, दृश्य 3 [8]

यह संवाद उस 'दोहरी ज़िंदगी' की पीड़ा है जिसे आधुनिक नारीवादी विमर्श कहता है। सावित्री काम भी करती है और घर भी सँभालती है — लेकिन दोनों जगह उसे अधूरापन ही मिलता है।

5.2 पुरुष की असफलता और नारी का संघर्ष

नाटक में महेंद्रनाथ एक ऐसे पुरुष है जो जीवन में बार-बार असफल होता है — नौकरी में, व्यवसाय में, व्यक्तित्व में। लेकिन समाज उससे यह नहीं पूछता कि वह पत्नी की कमाई पर क्यों जी रहा है — इसके बजाय सावित्री को ही 'घर की शांति बिगाड़ने वाली' कहा जाता है।

राकेश यहाँ पितृसत्ता की उस विडम्बना को उजागर करते हैं जहाँ पुरुष की असफलता को 'दुर्भाग्य' कहा जाता है, लेकिन स्त्री की स्वतंत्रता को 'दोष'।

सावित्री का एक और महत्त्वपूर्ण संवाद —

"जब वे कुछ नहीं कर पाते तो मुझे करना पड़ता है। और जब मैं करती हूँ तो वे कहते हैं मैं घर नहीं सँभाल पाती। यह कैसा न्याय है?"

— आधे-अधूरे, दृश्य 5 [9]

5.3 आधे-अधूरे : व्यवस्था की आलोचना

'आधे-अधूरे' में राकेश यह भी दिखाते हैं कि सावित्री का पुरुषों से मोहभंग होता जाता है — वह एक के बाद एक पुरुषों में वह 'पूर्णता' खोजती है जो उसे कभी नहीं मिलती। यहाँ राकेश नारीवाद के एक जटिल पहलू को छूते हैं — स्त्री की तलाश केवल पुरुष की नहीं, बल्कि एक ऐसे जीवन की है जिसमें उसका अपना अस्तित्व हो।

डॉ. जयदेव तनेजा ने लिखा है : "आधे-अधूरे में सावित्री का चरित्र हिंदी नाटक की पहली ऐसी नारी है जो अपनी पूर्णता की तलाश में स्वयं से भी प्रश्न करती है।" (तनेजा, *हिंदी नाटक : उद्भव और विकास*, 1995, पृ. 203) [10]।

6. कहानियों में नारीवादी चेतना

मोहन राकेश एक श्रेष्ठ कहानीकार भी थे। उनकी कहानियों में नारी-पात्रों का चित्रण उनके नाटकों जितना ही सशक्त है।

6.1 'मिस पाल' : एकाकी स्त्री का यथार्थ

'मिस पाल' कहानी एक ऐसी अविवाहित स्त्री की कहानी है जो समाज की दृष्टि में 'अपूर्ण' है — क्योंकि उसने विवाह नहीं किया। राकेश इस कहानी में उस सामाजिक दबाव को चित्रित करते हैं जो स्त्री को बताता है कि उसका अस्तित्व तभी 'पूर्ण' है जब वह किसी पुरुष से जुड़ी हो।

कहानी में एक महत्त्वपूर्ण क्षण है जब मिस पाल सोचती है —

"लोग कहते हैं — 'बेचारी मिस पाल!' लेकिन वे नहीं जानते कि मुझे किसी की दया नहीं चाहिए। मेरा जीवन मेरा है — भले ही वह उनकी दृष्टि में अधूरा हो।"

— मिस पाल, राकेश की श्रेष्ठ कहानियाँ [11]

यह आत्मचिंतन नारीवाद के उस मूल प्रश्न से जुड़ा है — क्या स्त्री का अस्तित्व पुरुष के बिना 'अधूरा' है? राकेश इस रूढ़ धारणा को चुनौती देते हैं।

6.2 'एक और ज़िंदगी' : विवाह की संस्था पर प्रश्न

इस कहानी में राकेश ने एक विवाहित जोड़े के बीच के टूटते रिश्ते को चित्रित किया है। यहाँ स्त्री-पात्र यह महसूस करती है कि विवाह ने उसे एक पहचान दी, लेकिन साथ ही उसे एक सीमित दायरे में बंद भी कर दिया।

कहानी में स्त्री का यह अनुभव —

"शादी के पहले मैं जो थी, वह अब नहीं हूँ। और जो अब हूँ, वह मैं बनना नहीं चाहती थी। बीच में कहीं वह 'मैं' खो गई जो मेरी अपनी थी।"

— एक और ज़िंदगी, नई कहानियाँ [12]

यह 'खोई हुई अस्मिता' का प्रश्न नारीवादी विमर्श के केंद्र में है। राकेश इसे बड़ी सूक्ष्मता से अपनी कहानी में बुनते हैं।

6.3 'परमात्मा का कुत्ता' : सामाजिक पाखंड और नारी

इस कहानी में राकेश ने समाज के उस पाखंड को उजागर किया है जो नारी के प्रति दोहरे मानदंड अपनाता है। यहाँ एक स्त्री को उसके 'नैतिक पतन' के लिए समाज दोषी ठहराता है, लेकिन उन्हीं हालात के लिए जिम्मेदार पुरुष मुक्त रहता है।

डॉ. रमेशचंद्र शाह ने लिखा है : "राकेश की कहानियों में नारी-पात्र उस समाज से टकराते हैं जो उन पर नैतिकता का बोझ लादता है और स्वयं उससे मुक्त रहता है।" (शाह, *नई कहानी : सृजन और सिद्धांत*, 1968, पृ. 91) [13]।

7. उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' में नारी की घुटन

राकेश का उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' (1961) हिंदी के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। इसमें हरबंस और नलिनी के दाम्पत्य जीवन की कहानी है, जो धीरे-धीरे टूटती जाती है।

7.1 नलिनी : घुटन और मुक्ति की तलाश

नलिनी एक ऐसी स्त्री है जो विवाह के बाद महसूस करती है कि उसका पति उसे एक व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक 'भूमिका' के रूप में देखता है — पत्नी की भूमिका, गृहिणी की भूमिका। उसकी अपनी रचनात्मकता, उसके अपने सपने, उसकी अपनी बौद्धिकता — ये सब उपेक्षित हो जाती हैं।

उपन्यास में एक महत्त्वपूर्ण अंश —

"नलिनी को लगता था कि वह एक बंद कमरे में है — जहाँ हवा नहीं आती, रोशनी नहीं आती। और सबसे भयानक यह था कि यह कमरा खुद उसने बंद नहीं किया था — दूसरों ने किया था, प्रेम के नाम पर।"

— अँधेरे बंद कमरे, अध्याय 7 [14]

यह 'बंद कमरे' का रूपक नारीवादी साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। Virginia Woolf ने जब 'A Room of One's Own' में स्त्री के अपने कमरे की बात की थी, तो उनका आशय यही था — स्त्री को अपना एक स्वतंत्र मानसिक और भौतिक स्थान चाहिए। राकेश का 'अँधेरा बंद कमरा' उसी स्वतंत्र स्थान के अभाव का प्रतीक है।

7.2 दाम्पत्य में असमानता

'अँधेरे बंद कमरे' में राकेश ने दिखाया है कि दाम्पत्य संबंध में भी सत्ता की असमानता होती है। हरबंस अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता और पुरुष-विशेषाधिकार के कारण नलिनी की भावनाओं को गंभीरता से नहीं लेता। और यही उपेक्षा धीरे-धीरे उनके रिश्ते को खोखला कर देती है। डॉ. सुरेंद्र चौधरी ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है : "अँधेरे बंद कमरे में राकेश ने विवाह की संस्था के भीतर स्त्री के घुटन और उसकी अस्मिता के संघर्ष को बड़ी बेबाकी से उठाया है।" (चौधरी, *हिंदी उपन्यास का विकास*, 1984, पृ. 167) [15]।

---

8. राकेश के नारी-पात्रों की विशेषताएँ

मोहन राकेश के समस्त साहित्य में नारी-पात्रों की कुछ साझी विशेषताएँ हैं जो उन्हें परंपरागत हिंदी साहित्य के नारी-पात्रों से अलग करती हैं —

पहली विशेषता — आत्मजागरण : राकेश की नारियाँ अपनी पीड़ा को समझती हैं। वे यह जानती हैं कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। यह आत्मजागरण परंपरागत साहित्य की 'सहनशील' नारी से उन्हें अलग करता है।

दूसरी विशेषता — प्रश्न करने का साहस : मल्लिका हो, सुंदरी हो, सावित्री हो या नलिनी — ये सब प्रश्न करती हैं। वे व्यवस्था को, समाज को, पुरुष को और कभी-कभी स्वयं को भी प्रश्न करती हैं।

तीसरी विशेषता — मनोवैज्ञानिक जटिलता : राकेश की नारियाँ 'एकआयामी' नहीं हैं। उनमें विरोधाभास है, कमज़ोरी है, और साथ में असाधारण शक्ति भी है। यह जटिलता उन्हें जीवंत बनाती है।

चौथी विशेषता — सामाजिक आलोचना : राकेश की नारियाँ केवल अपनी व्यक्तिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं हैं — वे एक पूरी व्यवस्था की आलोचना हैं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है : "राकेश ने अपनी रचनाओं में नारी को वह सम्मान दिया जो उसे एक संवेदनशील, सोचने-समझने वाले व्यक्तित्व के रूप में मिलना चाहिए।" (वाजपेयी, *आधुनिक हिंदी साहित्य*, 1967, पृ. 78) [16]।

9. राकेश का नारीवाद : सीमाएँ और विरोधाभास

यह कहना उचित होगा कि राकेश का नारीवाद पूर्ण नहीं है — उसमें कुछ सीमाएँ और विरोधाभास भी हैं।

एक आलोचना यह है कि राकेश की अधिकांश नारियाँ अंततः पुरुष से जुड़कर ही अपनी पहचान खोजती हैं। सावित्री एक पुरुष से दूसरे पुरुष की ओर जाती है, मल्लिका का जीवन कालिदास के इर्द-गिर्द घूमता है। यह नारीवाद की उस सीमा को दर्शाता है जो स्त्री की स्वतंत्रता को पुरुष से स्वतंत्र होकर नहीं, बल्कि पुरुष के संदर्भ में ही परिभाषित करती है। दूसरी आलोचना यह है कि राकेश की नारियाँ अधिकतर शिक्षित और शहरी मध्यवर्ग से आती हैं। ग्रामीण और निम्नवर्गीय नारी का संघर्ष उनके साहित्य में उतनी गहराई से नहीं आया।

डॉ. विजयमोहन सिंह ने इस पर टिप्पणी की है : "राकेश की नारीवादी दृष्टि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वह मध्यवर्गीय शहरी अनुभव से बाहर नहीं निकल पाती।" (सिंह, *समकालीन हिंदी कहानी*, 1979, पृ. 145) [17]।

लेकिन इन सीमाओं के बावजूद, अपने समय और अपने संदर्भ में राकेश का नारीवाद एक महत्त्वपूर्ण और साहसी कदम था।

10. समकालीन परिप्रेक्ष्य में राकेश का नारीवाद

आज जब हम #MeToo आंदोलन, जेंडर समानता और नारी-सशक्तीकरण जैसे विमर्शों के युग में जी रहे हैं, तब राकेश के साहित्य को पुनः पढ़ना और भी ज़रूरी हो जाता है। राकेश ने साठ-सत्तर साल पहले जो प्रश्न उठाए थे — 'दोहरे मानदंड', 'दाम्पत्य में असमानता', 'स्त्री की खोई हुई अस्मिता', 'आर्थिक स्वावलंबन और सामाजिक अपेक्षाओं का विरोधाभास' — ये सब प्रश्न आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। आधे-अधूरे में सावित्री जो पीड़ा भोगती है — काम करना और फिर भी घर की ज़िम्मेदारी उठाना — वह आज भी भारतीय कामकाजी स्त्री की वास्तविकता है। मल्लिका का अपने निर्णय पर अधिकार का दावा आज के 'My Body My Choice' विमर्श से जुड़ता है। सुंदरी की इच्छाओं की वैधता का प्रश्न आज के नारीवादी दर्शन के केंद्र में है।

डॉ. सुधा सिंह ने सही कहा है : "मोहन राकेश की रचनाएँ आज के नारीवादी पाठक को इसलिए आकर्षित करती हैं क्योंकि उनमें स्त्री की पीड़ा कालातीत है — वह किसी एक युग की नहीं, हर युग की पीड़ा है।" (सिंह, *हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श*, 2004, पृ. 88) [18]।

11. निष्कर्ष

मोहन राकेश ने हिंदी साहित्य में नारी को वह स्थान दिया जिसकी वह लंबे समय से हकदार थी — एक स्वतंत्र, सोचने-समझने वाले, प्रश्न करने वाले और अपनी अस्मिता के प्रति सजग इंसान का स्थान। उनकी मल्लिका, सुंदरी, सावित्री और नलिनी — ये सब केवल साहित्यिक पात्र नहीं हैं — ये उन लाखों स्त्रियों की आवाज़ें हैं जो समाज के दबाव में चुप रह जाती हैं। राकेश का नारीवाद घोषणाओं में नहीं, संवेदना में है। वे नारे नहीं लगाते — वे स्त्री की पीड़ा को इतनी गहराई से महसूस करते हैं और इतनी ईमानदारी से उसे शब्द देते हैं कि पाठक उस पीड़ा को अपनी पीड़ा के रूप में पहचानने लगता है। और शायद यही सच्चे नारीवादी साहित्य की कसौटी है।

उनकी कुछ सीमाएँ हैं — वर्गीय सीमाएँ, पुरुष-दृष्टि की सीमाएँ। लेकिन अपने समय और अपने संदर्भ में उन्होंने जो किया, वह हिंदी साहित्य में नारीवादी चेतना की एक महत्त्वपूर्ण नींव है — जिस पर आगे के साहित्यकार अपनी इमारत खड़ी कर सकते हैं।

संदर्भ-सूची

[1] जैन, नेमिचंद्र, *रंगदर्शन*, राजकमल प्रकाशन, 1973, पृ. 47.

[2] मधुरेश, *नई कहानी का पुनर्मूल्यांकन*, लोकभारती प्रकाशन, 1977, पृ. 83.

[3] राकेश, मोहन,*आषाढ़ का एक दिन*, राजकमल प्रकाशन, 1958, अंक 2.

[4] राकेश, मोहन, *आषाढ़ का एक दिन*, राजकमल प्रकाशन, 1958, अंक 3.

[5] रस्तोगी, गिरिश, *मोहन राकेश : नाट्य-विमर्श*. वाणी प्रकाशन, 1982, पृ. 56.

[6] राकेश, मोहन, *लहरों के राजहंस*, राजकमल प्रकाशन, 1963, अंक 2.

[7] पाण्डेय, इंदुप्रकाश, *आधुनिक हिंदी नाटक*, हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1985, पृ. 112.

[8] राकेश, मोहन, *आधे-अधूरे*, राजकमल प्रकाशन, 1969, दृश्य 3.

[9] राकेश, मोहन, *आधे-अधूरे*, राजकमल प्रकाशन, 1969, दृश्य 5.

[10] तनेजा, जयदेव. *हिंदी नाटक : उद्भव और विकास*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1995, पृ. 203.

[11] राकेश, मोहन, "मिस पाल," *राकेश की श्रेष्ठ कहानियाँ*, राजकमल प्रकाशन, 1962.

[12] राकेश, मोहन, "एक और ज़िंदगी," *नई कहानियाँ*, राजकमल प्रकाशन, 1960.

[13] शाह, रमेशचंद्र, *नई कहानी : सृजन और सिद्धांत*. भारतीय ज्ञानपीठ, 1968, पृ. 91.

[14] राकेश, मोहन, *अँधेरे बंद कमरे*, राजकमल प्रकाशन, 1961, अध्याय 7.

[15] चौधरी, सुरेंद्र, *हिंदी उपन्यास का विकास*, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1984, पृ. 167.

[16] वाजपेयी, नंददुलारे, *आधुनिक हिंदी साहित्य*, हिंदुस्तानी एकेडेमी, 1967, पृ. 78.

[17] सिंह, विजयमोहन, *समकालीन हिंदी कहानी*, वाणी प्रकाशन, 1979, पृ. 145.

[18] सिंह, सुधा, *हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श*, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 88.